टिप्पणी

18

शुकनासोपदेश–लक्ष्मी के दुष्प्रभाव–1

इस पाठ में शुकनासोपदेश के ''एवंविधयापि चानया'' से आरम्भ करके ''सर्वजन स्योपहास्यतामुपयान्ति'' यहाँ तक के अंश का वर्णन किया गया है। लोभ पाप का कारण है। राजा बनते ही दुर्लभ इस श्री लक्ष्मी को प्रतिक्षण प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते हैं। जीर्णवेग होने पर भी भोग विलास करने के लिए प्रयत्न करते है। दुर्जनों के साथ सगंति करके उनका और अधिक पतन होता है। सदुपदेशग्राही राजाओं का स्वार्थी व कुटिल मन्त्री उनको अनैतिक कर्म की प्रेरणा देते हैं। वे परानुकरण परस्त्रीगमन और असदाचरण को ही सदाचारण मानते हैं। उससे वे राजा प्रजा के सुख दु:खादि को नहीं देखते हैं परन्तु स्वयं के ही भोगसुखादि का ही परिरक्षण करते हैं। इस प्रकार के आचरण से वे विपद्गामी विपथगामी होते हैं। इस पाठ में मन्त्री के उपदेश का प्रतिपादन है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप समक्ष होंगे :

- राजसभा में स्थित कुटिल जनों के मनोभावों को समझ पाने में;
- कुटिलता कैसे राजा को वशीभूत करती है, यह समझ पाने में;
- खलजनों के वाक्यों का अनुसरण से राजाओं की होने वाली हानियों को जान पाने में;
- विमूढ राजाओं का खलानुसार से गुरू की उपेशादि निन्दनीय कर्म को जान पाने में और;
- पाठस्थ पदों के अन्वयार्थ और समास को समझ पाने में।

टिप्पणी

18.1 मूलपाठ

एवंविधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानताञ्च गच्छन्ति। तथाहि अभिषकसमय एष चैषां मंगलकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्, अग्रिकार्य्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसम्मार्जनीभिरिव अपनीयते क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवावच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्य्यते परलोकदर्शनम्, चामरपवनैरिवापह्रियते सत्यवादिता, वेत्रदण्डैरिवोत्सार्य्यन्ते गुणाः, जयशब्दकलकलरवैरिव तिरस्क्रियन्ते साधुवादाः ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः।

व्याख्या- इस प्रकार पूर्वोक्त लक्षण से युक्त इस दुराचारिणी लक्ष्मी द्वारा किसी प्रकार महान कष्ट या भाग्यवश स्वीकृत राजा लोग व्याकुल हो जाते हैं और अदृष्टवश सभी प्रकार की ढीठताओं के पात्र बन जाते हैं। वे सभी अविनयों के अधिष्ठाता या आश्रयता को प्राप्त होते हैं।

अभिषेक के समय ही उनकी दया-दाक्षिण्य आदि मानो मांगलिक कलशों के जल से धुल जाती है। अभिषेक के समय हवन के धुएं से मानो उसके हदय मलिन हो जाते हैं। पुरोहितों की कुशाग्ररूपी मार्जनी से मानो क्षमा गुण दूर कर दिये जाते हैं। रेशमी कपड़े की पगड़ी के बाँधने से मानो मैं वृद्ध होऊँगा, इस प्रकार की चिन्ता को ढ़क देती है। आतपत्र मण्डल या प्रसारित छत्र से ही मानो जन्मान्तर के प्रति दृष्टिपात रोक दी जाती है। चामर की वायु से सत्यवादिता को उड़ा देती है। बेंत की छड़ी के समान दया दाक्षिण्यादि सब गुणों को बाहर निकाल दिये जाते है। जय ध्वनि के कोलाहल के साथ उनकी सज्जनता की प्रशंसा को तिरस्कृत किया जाता है। वैजयन्ती वस्त्र, पल्लव रूप, पताका से उनकी कीर्ति व यश को मिटा दिया जाता है।

सरलार्थ- यह दुराचारिणी लक्ष्मी यदि राजाओं द्वारा कभी देव या भाग्यवश स्वीकृत कर ली गयी तो सभी दुर्गति उनका आश्रम स्थल हो जाती है। जैसा कि अभिषेक के समय में मंगल कलश के जल से इन राजाओं की उदारता धुल जाती है। हवन के धूम से चित को मलिन किया जाता है, पुरोहित के कुशाग्रभागरूप मार्जनी से दया-दाक्षिण्य, क्षमा, सन्तोष आदि गुण दूर किये जाते है, मस्तक पर पट्टबन्धन अर्थात पगड़ी से राजाओं के वार्धक्यगति की स्मृति को ढक दिया जाता है। चामर, छत्र से सत्यकथन को रोक दिया जाता है, जय शब्दों की ध्वनि से हितकारी वचनों को नहीं सुनने दिया जाता है। जिस यश के नाम से राजाओं की स्तुति होती है। उस स्तुति या यश को ध्वजा के वस्त्ररूप पत्रों से उसी प्रकार दूर किया जाता है जैसे पत्रों से मल को साफ किया जाता है। इस प्रकार लक्ष्मी राजाओं को पीड़ित करती है।

व्याकरणविमर्श-

समास-

- **उष्णीषपट्टबन्धेन**-उष्णीषस्य पट्टबन्धः उष्णीषपट्टबन्धः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तेन उष्णीषपट्टबन्धेन इति।
- **चामरपवनैः** - चामरस्य पवनैः चामरपवनैः इति षष्ठीतत्पुरुषः।

- **जयशब्दकलकलरवैः** - जयशब्दस्य कलकलरवाः जयकलकलरवाः इति षष्ठीतत्पुरुषः, तैः जयशब्दकलकलरवैः इति।

सन्धि-

- **मंगलकलशजलैरिव** - मंगलकलसजलैः +इव।
- **सम्मार्जनीभिरिवापह्नियते** - सम्मार्जनीभिः+ इव +अपह्नियते।
- **उष्णीषपट्टबन्धेनेवावच्छाद्यते** - उष्णीषपट्टबन्धेन+ अवच्छाद्यतें।

अलंकार विमर्श-

- **एवंविधया**- इस वाक्य में कार्य द्वारा लक्ष्मी में पिशाचीत्व आदिका समावेश होने से समासोक्ति अलकार है।
- **अभिषेक समये**- यहां से परामृश्यते इव इस वाक्य में प्रक्षालन आदि क्रियाओं का उत्पेक्षा होने से क्रिया उत्प्रेक्षा अलंकार है।
- 'पुरोहित कुशाग्र सम्मार्जनीभिः' इस वाक्य में कुशाग्र आदि का सम्मार्जनी आदि से अभेद प्रतिपादन के कारण रूपक अलंकार है।

कोश-

- ''हैमं छत्रं त्वातपत्रम्'' इत्यमरवचनात् हैमम्, छत्रम्, आतपत्रम् इत्येते समार्थकाः शब्दाः।
- ''पताका वैजयन्ती स्यात्केतनं ध्वजमस्त्रियाम्'' इत्यमरवचनात् पताका, वैजयन्ती, केतनम्, ध्वजम् इत्येते समार्थकाः शब्दाः।
- ''कलशस्तु त्रिषु द्वयोः। घटः कुटनिपावस्त्री'' इत्यमरवचनात् कलशः, घटः, कुटः, निपः इत्येते समार्थकाः।

पाठगतप्रश्न 18.1

1. दुराचारी लक्ष्मी से परिग्रहीत राजा कैसे होते है?
2. अभिषेक के समय किसके समान राजाओं का दाक्षिण्य गुण धुल जाता है?
3. राजाओं का हदय किससे मलिन होता है?
4. राजाओं का क्षमागुण किससे दूर होता है?
5. अभिषेक के समय राजाओं का वार्धक्य वृद्धि किससे दूर होती है?
6. राजाओं का यश अभिषेक काल में किससे साफ किया जाता है?

टिप्पणी

18.2 मूलपाठ

केचिच्छ्रमवश-शिथिलशकुनिगल-पुट-चपलाभि: खद्योतोन्मेष-मुहूर्त-मनोहराभिर्मनस्विजनगर्हिताभि: सम्पद्भि: प्रलोभ्यमाना: धन-लवलाभावलेपविस्मृतजन्मानोऽलेकदोषोपचितेन दुष्टासृजेव रागावेशेन बाध्यमाना:, विविधविषय-ग्रास-लालसै: पच्ञभिरप्यनेकसहस्रसंख्यैरिवेन्द्रियैरायास्यमाना:, प्रकृतिचच्ञलतया लब्धप्रसरेणैकेनापि सहस्रतामिवोपगतेन मनसा आकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति। ग्रहैरिव गृह्यान्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्त्वैरिवावष्टभ्यन्ते, वायुनेव विडम्ब्यन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते। मदनशरैर्मर्म्माहता इव मुखभङ्सहस्त्राणि कुर्वते, धनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्तें, गाढप्रहाराहता इवाङ्गानि न धारयन्ति, कुलीरा इव तिर्य्यक् परिभ्रमन्ति, अधर्म्मभग्रगतय: पग्डव इव परेण सञ्चार्य्यन्ते, मृषावाद-विष-विपाक-सञ्जाज-मुखरोगा इवातिकृच्छ्रेण जल्पन्ति, सप्तच्छद-तरव इव कुसुमरजोविकारै: पार्श्ववर्तिनां शिर:शूलमुत्पादयन्ति, आसून्नमृत्यव इव बन्धुजनम् अपि नाभिजानन्ति, उत्कुपित-लोचना इव तेजस्विनों नेक्षन्ते, कालदष्टा इव महामन्त्रैरपि न प्रतिबुध्यन्ते, जातुषाभरणानीव सोष्माणं न सहन्ते, दुष्टवारणा इव महामानस्तम्भनिश्चलीकृता ना ग्रहवून्त्युप्रदेशम्, तृष्णाविषमूर्च्छिता: कनकमयमिव सर्वं पश्यन्ति, इष वइव पानवर्द्धिततैक्ष्ण्या: परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानीव दण्डविक्षेपैर्महाकुलानि शातयन्ति, अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहरकृतयोऽपि लोकविनाशहेतव:, श्मशानाग्रय इवातिरौद्रभूतय:, तैमिरिका इवादूरदर्शिन: उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवना:, श्रूयमाणा अपि प्रेतपटहा इवोद्वेजयन्ति, चिन्त्यमाना अपि महापातकाध्यवसाया इवोपद्रवमुपजलयन्ति, अनुदिवसमापूर्य्यमाणा: पापेनेवाध्मातमूर्त्तयो भवन्ति, तदवस्थाश्च व्यसनशतशरव्यतामुपगता वल्मीकतृणाग्रावस्थिता: जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्दन्ति।

व्याख्या-

केचिद् शब्द का विह्वलतामुपयन्ति इस भाग के साथ सम्बन्ध है। अत: केचिद् का अर्थ कुछ व्याकुल राजाओं के साथ है। कुछ राजा श्रमवश शिथिल हुए मयूरादि पक्षियों के गलपुर(गर्दन) उसी के समान चंचल से, जुगनू (खद्योत) के प्रकाश के समान क्षण भर लिए मनोहारी होने से ज्ञानी जनों द्वारा निन्दित धनसम्पति से प्रलोभ्यमान राजा लोग विकलता को प्राप्त होते हैं।

वे सामान्य धन-लाभ के अहंकार से अपने-अपने जन्म समय के वृतान्त को भूल जाते है, वे वात, पित्त, कफ से दूषित रक्त के समान क्रोधादि दोषों से वृद्धि प्राप्त विषयासक्ति में यातना भोग करते रहते हैं। शब्द स्पर्शादि अनेक प्रकार के विषयों के रस का आस्वादन करने के अभिलाषी एवं पंचसंख्यक होने पर भी विषय बाहुल्य से मानो अनेक सहस्र संख्या को प्राप्त किये हुए इन्द्रियों से दुखभोग करते रहते हैं और मन स्वभावत चंचल होने के कारण अवकाश मिलने पर अनके विषयों में दौड़ता रहता है। अतएव एक होने पर भी मानो सहस्र संख्या के प्राप्त हुए उस मन से राजा लोग आकुल हो कर एक ही वार से व्याकुल हो जाते है।

उस समय पूतना राक्षसी आदि कोई ग्रह आकर मानो उन लोगो को घेर लेती हैं। भूत-पिशाच उन पर प्रभाव डालते है। किसी मन्त्र वैदिक या तान्त्रिक शक्ति से मानो उन लोगों को वश में कर लेते हैं। हिंसक जन्तु सिंहादि एव विकराल प्राणी मानों हठ से उनको पकड़ लेते हैं। वायु

टिप्पणी

रोग से ही मानो वे विचलित किये जाते हैं। पिशाच मानो उनका ग्रास करते हैं कामदेव के बाणों से मर्म आहत होकर ही मानो वे हजारों मुख विकार करते रहते हैं। धन की अहंकाररूपी अग्नि में पच्यमान होकर ही वे अनेक प्रकार की भावभंगी प्रकट करते हैं। कर्क या केकड़ें के समान सभी के साथ कुटिल रूप से चलते रहते हैं। अधर्म के कारण कर्तव्यपथ में चलने की शक्ति नष्ट हो जाती है। अतएव पंगु के समान वे अन्य पुरुष के सहारे से चलते हैं। सत्यवादिता रुपी विष के विकार से मुखरोग उत्पन्न होता है। जिस कारण वे अत्यन्त कष्ट से बोलते हैं। जिस प्रकार सप्तपर्ण का वृक्ष अपने पुष्प के पराग से समीपवर्ती लोगों के सिर में पीडा उत्पन्न करता है उसी प्रकार वे राजा लोग भी रजोगुण से उत्पन्न अवज्ञा सूचक नेत्र भंगी, नेत्र दोष द्वारा अपने पास में बैठने वाले लोगों में दु:ख उत्पन्न करते हैं। मुमुर्षु अर्थात् मरणासन्न व्यक्ति के समान वे लोग अपने बन्धु जनों को भी नहीं पहचानते हैं। जिस नेत्रदोष या नेत्र रोग होने पर लोग किसी चमकीले पदार्थ के प्रति दृष्टिपात करने में समर्थ नहीं देखते हैं। जिस प्रकार लोग भयंकर सर्प के काटे जाने पर विष-वैध अर्थात् ओझा या गरुड मन्त्र कर्ता के उत्कष्ट मन्त्रों से भी चेतनता प्राप्त नहीं करते है उसी प्रकार वे लोग भी उत्कृष्ट मन्त्रणाओं अर्थात् योग्य मन्त्रीजनों की सलाह से भी अपने कर्तव्य को समझने में समर्थ नहीं होते हैं। लाक्षनिर्मित आभूषण के समान वे दूसरे के प्रताप (अग्नि की ऊष्णता) को सहन करने में समर्थ नहीं होते हैं। जिस प्रकार दुष्ट हाथी बड़े परिमाण के बन्धस्तम्भ से बांधकर निश्चल किये जाने पर भी महावत की शिक्षा को ग्रहण नहीं करता है उसी प्रकार के राजा लोग भी अत्यन्त अहंकार से स्तब्धतावश निस्पन्द रहकर किसी का उपदेश ग्रहण नहीं करते हैं। वे राजा लोग धन लालसा रूप विषवेग से विभ्रान्त होकर संसार की सब वस्तुओं को ही मानो धनमय देखते हैं। जिस प्रकार शाण चढ़ाने वाले प्रस्तर के घर्षण से तीखे तीव्र बने बाण धनुष द्वारा छोड़े जाने पर लक्ष्यपदार्थ को विनष्ट करता है। उसी प्रकार वे लोग भी मद्यपान से उग्र स्वरुप बढ़ जाने के कारण तथा दूसरों को खुश करने के लिए प्रजाओं को विनष्ट करते हैं।

मनुष्य जिस प्रकार डंडे को फेंक कर दूर रहने पर भी बड़े-बड़े फलों को तोड़ लेता है। वे राजा लोग भी उसी प्रकार दण्ड का प्रयोग कर दूर स्थित होने पर भी सत्कुलोत्पन्न लोगों को विनष्ट करते हैं। जिस प्रकार असामयिक पुष्प का विकास सुन्दर होने पर भी लोगों के विनाश का सूचक होता है उसी प्रकार वे राजा लोग मनोहर आकार वाले होने पर भी लोगों के विनाश के कारण बने रहते है। जिस प्रकार शमशान में स्थित अग्नि की भस्म अत्यन्त भयंकर होती है उसी प्रकार उन लोगों की सम्पत्ति भी अत्यन्त भयंकर होती है।

नेत्ररोग उत्पन्न होने पर जिस प्रकार लोग दूर की वस्तु को नहीं देख सकते हैं। उसी प्रकार वे राजा भी दूरदृष्टि के अभाव के कारण परिणाम को नहीं देख पाते हैं। जिस प्रकार वैश्याओं के गृह कामुक लोगों से युक्त होते हैं उसी प्रकार उन राजाओं के महल भी नीच जनों से युक्त होते हैं। मृत व्यक्ति के दाहकालीन ढक्का (प्रेतपटहा) शब्द सुन जाने वाला वाद्य विशेष को प्रेतपटहा कहते हैं।

ब्रह्म हत्या आदि महापातकों का अनुष्ठान करने के उद्योग के समान उनका ध्यान करने से भी मन में अशान्ति उत्पन्न होती है। वे प्रतिदिन महापातक रुपी पाप से परिपूर्ण होकर भी स्फीतदेह हो जाते हैं इस प्रकार वे राजा लोग काम क्रोध जनित अनेक विध दोषों का आश्रय होकर

वाल्मीक (बांबी) के ऊपर विद्यमान तृण के अग्रभाग के अग्रभाग पर पडी हुई जल की बुंदों के समान पतित (भूमिच्युत) होने पर भी अपने को पतित (स्वधर्मच्युत) नहीं समझ पाते हैं।

सरलार्थ- यह सम्पत्ति परिश्रमवंश शिथिल हुए पक्षी के गलदेश के समान, खद्योत (जुगनू) के प्रकाश के समान जो क्षणिक सुन्दर होता है। अतएव ज्ञानियों द्वारा निन्दित यह लक्ष्मी प्रलोभित हुए कुछ राजा लोग तो ज्ञानी जनों की निंदा के पात्र होते है। ये किंचित् धनलाभ के लिए अहंकार से अपने-अपने जन्म के वृतान्त को भूल जाते हैं। वात, पित्त, कफ दूषित रुधिर ही अनेक दोषों से बढ़ता हुआ विषयासक्ति यन्त्रणाओं का भोग करते हैं।

शब्दस्पर्शादि विषयों के ग्रहण में लोलुप होने से विषयों के बाहुल्यता से हजारों की संख्या से इन्द्रियों से कष्ट का अनुभव करते हैं। स्वभाव से मन विविध विषयों में दौड़ता है। अत: एक ही मन हजारों सा प्रतीत होता है। उस मन से राजा लोग चंचलता को प्राप्त होते हैं और वे राजा जन पुन:दुष्ट ग्रहों से आविष्ट के समान, भूत प्रेतों से गृहीत के समान, मन्त्र शक्ति से वशीभूत के समान, वन्यपशुओं से आक्रान्त के समान, पिशाचों से ग्रस्त के समान दिखाई देते हैं। वे मुख को वक्र करते हैं, कामदेव के पुष्पबाणों से घायल के समान, आचरण करते हैं। धन के अहंकाररूपी अग्नि से पके हुए के समान, कर्कवत् अर्थात् केकड़े के समान कुटिल व्यवहार करते हैं। पाप से कर्तव्य मार्ग का अनुसरण करने से राजाओं की शक्ति नष्ट होती हैं। इस कारण वे राजा पंगू के समान अन्य लोगों द्वारा संचालित होते हैं।

असत्य कथन रूप अभ्यास के विष से विकृत मुखवाले वे कष्ट से बोलते हैं। सप्तपर्ण पुष्पों के पराग के स्पर्श से जैसी शिरोवेदना उत्पन्न होती है। उसी प्रकार उन राजाओं के रजोगुण सम्भूत रक्त नेत्र युगल प्रजा को दु:ख का सम्पादन करते हैं। वे राजा लोग मरणासन्न जन के समान बान्धवों को नहीं पहचानते हैं नेत्ररोग से आक्रान्त के समान वे प्रतापी जनों को नहीं देखते हैं। कालसर्प से दंशित जन विष वैध के महामन्त्रों से भी चैतन्य को प्राप्त नहीं होते हैं। उसी प्रकार वे राजा उत्कृष्ट मन्त्रियों की मन्त्रणा से भी अपने कर्त्तव्य को नहीं जानते है। स्तम्भ से बन्धे हाथी के समान हितकारी उक्ति को नहीं सुनते हैं।

धन के लालसारूपी विष से मूर्च्छित वे सब कुछ ही धनमय देखते हैं। पत्थर से शोणित बाण जैसे धनु से छोड़े जाने पर निर्दिष्ट लक्ष्य को भेदता हैं उसी प्रकार सुरा के सेवन से वर्धित उग्र स्वभाव वाले राजा अन्यों द्वारा प्रेरित होते हुए प्रजा को पीड़ित करते हैं। यथा छड़ी के फेंकने से दूरस्थित फल का ग्रहण होता है उसी प्रकार वे सद्वंश उत्पन्न लोगों का विनाश करते हैं। उस समय विकसित पुष्प के समान सुन्दर होते हुए भी लोगों के विनाश के सूचक हैं उसी प्रकार मनोरम आकृति वाले राजा लोगों के विनाश के कारण होते हैं। श्मशान भूमि में स्थिति अग्नि की भस्म अत्यन्त भयंकर होती है उसी प्रकार राजा की सम्पति भयंकर होती है। नेत्ररोग से आक्रान्त जैसे दूरस्थ वस्तु को नहीं देख सकता उसी प्रकार राजा कृत परिणाम को देखने में असमर्थ है। राजभवन उसी प्रकार होता है जैसे कामुक वनिता (वैश्या) के द्वार के समान नीचस्व-नीचस्वभाव वालों का सदन। मृत व्यक्ति के दाहकानीन के ढक्का की ध्वनि के समान राजग्रह का नाम सुनकर उद्वेग पैदा होता है। ब्रह्महत्यादिरुप पापानुष्ठानों का उद्योग के समान उसके ध्यान मात्र से ही मन में अशान्ति उत्पन्न होती हैं लेकिन ये पाप से प्रतिदिन पवित्र होते हुए राजा स्फीतशरीर होते हैं। उस अवस्था में कामादि दोषों से दुष्ट वे वाल्मीक (बांबी) की

मृतिका से उत्पन्न तृणों के आगे पवित्र जल बिन्दु के समान अपने पतन को भी जानने में भी समर्थ नहीं होते हैं।

व्याकरणविमर्श

समास

- **धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानः** - धनस्य लवः धनलवः इति षष्ठीतत्पुरुषः। धनलवस्य लाभः धनलवलाभः इति षष्ठीतत्पुरुषः। धनलवलाभेन अवलेपः धनलवलाभावलेपः इति तृतीयातत्पुरुषः। तेन विस्मृतं धनलवलाभावलेपविस्मृतम् इति तृतीयातत्पुरुषः। धनलवलाभावलेपविस्मृतं जन्म येषां ते धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानः इति बहुव्रीहिसमासः।
- **उत्कुपितलोचनाः** - उत्कुपिते लोचने येषां ते उत्कुपितलोचनाः इति बहुव्रीहिसमासः।
- **मृषावादविषविपाकसज्ञातकुरखरोगाः** - मृषावाद एव विषम् मृषावादविषम् इति कर्मधारयसमासः। तस्य विपाकः मृषावादविषविपाकः इति तृतीयातत्पुरुषः। मृषावादविषविपाकेन सज्ञातः मृषावादविषविपाकसज्ञातः इति तृतीयातत्पुरुषः। मृषावादविषविपाकसज्ञातः मुखरोगः येषां ते मृषावादविषविपाकसज्ञातकुरखरोगाः इति बहुव्रीहिसमासः।
- **महामानस्तम्भनिश्चलीकृताः** - महत् मानं यस्य स महामानः इति बहुव्रीहिः। महामान एव स्तम्भः महामानस्तम्भः इति कर्मधारयः। महामानस्तम्भेन निश्चलीकृताः महामानस्तम्भनिश्चलीकृताः इति तृतीयातत्पुरुषः।

सन्धि

- **पंचभिरप्यनेकैः** - पंचभिः+ अपि+ अनेकैः।
- **भूतैरिवाभिभूयन्ते** - भूतैः+ इव+ अभिभूयन्ते।
- **मन्त्रैरिवावेश्यन्ते** - मन्त्रैः+ इव +आवेश्यन्ते।
- **यहस्रसंख्यैरिवेन्द्रियैरायास्यमानाः** - सहस्रसंख्यैः+ इव +इन्द्रियैः +आयास्यमानाः।

अलंकार विमर्श

- धनलाभ इस से बाध्यमान तक के अंश मे दूषितरैतेन उपमान के साथ रागावेश का अवैधर्म्य का साम्य का कथन होने से उपमालंकार। यहां उपमान, उपमेय, उपमावचक शब्द और साधारण धर्म इन अशंचतुष्टय के होने से पूर्णोपमा है उसका लक्षण साहित्यदर्पण में-

  सा पूर्णा सामान्यधर्म औपम्यवाचि च।
  उपमेयं चोपमानं भवेद्वाच्यम्॥

- **विविधेत से आयास्यमाताः** तक वाक्य में गुण की संभावना होने से ग्रणोत्प्रेणालंकार है।
- एवमेव प्रकृति इति इस वाक्य में, मन्त्रैरिव्यास्मिन्, मदनशरैः इस वाक्य में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

- **कुलीराः** इस वाक्य में, अधर्ममग्रगतयः इस वाक्य में उपमानोपमेय का अवैधर्म्य का साम्य कथन से पूर्णोपमा अलंकार है।
- **मृषावादविषविपाक** -यहाँ मृषावाद ही विष है अतः यहाँ निरंग रुपक है।
- उत्कुपितलोचना वाक्य में उपमालंकार है।
- **कालदष्यः** वाक्य में संसृष्टि अलंकार है।
- तृष्णा विषमूच्छिताः वाक्य में रुपक, उत्प्रेक्षा का अंग अगि भाव से संकर अलंकार है।
- **इषवः**, दूरस्थितान्, अकालेत, श्मशानाग्रयः, इन वाक्यों में उपमा अलंकार, तैमिरिका, उपसृष्टा, श्रूयमाणाचिन्त्यमाना, अनंदितसम वाक्यों में उपमालंकार है।

कोश

- **कुसुमं स्त्रीरजोनेत्ररोगयोः** फलपुष्पयोः'' इति मेदिन्युक्तेः कुसुमशब्दस्य स्त्रीरजः, नेत्ररोगः, फलम्, पुष्पम् इत्येतेषु अर्थेषु व्यवहारो भवति।
- **भूतिर्भस्मनि सम्पत्तिहस्तिश्रृङ्गरयोः** स्त्रियाम्'' इति मेदिनीकोशाद् भूतिशब्दस्य सम्पत्तिः हस्तिश्रृङ्गरम् इत्यनयोः अर्थयोः प्रयोगः।

पाठगत प्रश्न 18.2

7. क्षणस्थायी सम्पदा प्राप्त राजा किनकी निन्दा के पात्र होते हैं?
8. राजाओं की उन इन्द्रियों की आधिक्य के कारण क्या हैं?
9. मन कैसे विविध विषयों में दौड़ता है?
10. मदन के वाणों से घायल राजा क्या करते है?
11. राजा किसके समान वक्रगति से जाते है?
12. मुमूर्पूवत् वे राजा किसके परिचय में असमर्थ होते है?
13. राजसम्पत्ति कैसी होती है?
14. वे राजा किसके समान प्रजा को शिरोवेदना पैदा करते है?

18.3 मूलपाठ 12

अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरैर्धन-पिशित-ग्रास-गृध्रैरास्थाननलिनीबकैः, द्युतं विनोद इति, परादाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगया श्रम इति, पानं विलास इति, प्रमत्तता शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागोऽव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणम् अपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यता सुखोपसेव्यत्वमिति नृत्य-ग्रीत-वाद्य-वेश्याभिसक्ती

टिप्पणी

रसिकतेति, महापराधाकर्णनं महानुभावतेति, पराभवसहत्वं क्षमेति, स्वच्छन्दता प्रभुत्वमिति, देवावमाननं महासत्त्वतेति, वन्दितजनख्यातिर्यश इति, तरलता उत्साह इति, अविशेषज्ञता अपक्षपातित्वमिति दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयदिभ्रन्तः स्वयमति विहसदिभ्:। प्रतारणकुशलैर्धूर्त्तरमानुषोचिताभिः स्तुतिभिः प्रतार्य्यमाणा वित्तमदमत्तचिन्ता निश्चेतनतया तथैवेत्यन्यारोपितालीकाभिमाना मर्त्यधर्म्माणोऽपि दिव्यांशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणाः प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः सर्वजनस्य उपहास्यतामुपयान्ति।

व्याख्या-

दूसरे अनेक ऐसे राजा हैं जिनकी सभा में स्वार्थ सम्पादन में रत एवं धनरूपी मांस का ग्रास करने से गृध स्वरुप और सभा मण्डप रूपी कमलिनी में बगुला पक्षी स्वरुप तथा ठगने में कितने ही धूर्त गण रहते हैं। जो राजाओं को इस प्रकार समझाया करते हैं कि जुआ खेलना विनोद है, परस्त्री से दुराचार चतुरता है, शिकार खेलना व्यायाम हैं मद्यपान करना विलासिता है, किसी विषय में सावधानी न रखना वीरता है अपनी पत्नी को छोड़ देना अनासक्ति है, गुरु के उपदेश को ग्रहण नहीं करना स्वाधीनता है। स्वाधीन रुप या मनमाने ढंग से चलने वाले सेवक जनों को दण्ड न देना सुखपूर्वक शुश्रूषा या सेवा है, नाचना गाना और बजाना व वैश्याओं में आसक्ति रखना रसिकता है, बड़े-बड़े अपराधों को नहीं सुनना अर्थात् उन पर ध्यान नहीं देना महानुभावता का परिचय हैं, दूसरे का अपमान सहन करना क्षमा है, स्वेच्छाचारिता प्रभुत्व है, देवताओं का तिरस्कार करना या उनको कुछ न गिनना महाबलशालिता का परिचय है, बन्दीजनों से की गई प्रशंसा ही यश है, मन की चंचलता ही उत्साह है एवं सूक्ष्म रुप से कार्यो की पर्यालोचना न करना अर्थात् भले-बुरे का भेद न जानना निष्पक्षता है इस प्रकार धोखा देने में निपुण धूर्त लोग दोषों को भी गुण की श्रेणी में आरोप करते हैं किन्तु मन में अपने से भी उपहास करते हैं और देवता के उपयुक्त स्तुति या मनुष्यों के अयोग्य खुशामद करके राजाओं को ठगते रहते हैं। एक ही धन के अहंकार से उत्पन्न होकर उन लोगों की इस प्रकार की स्तुति से चैतन्यविहीन हो जाते है अतएव ये लोग जैसे बोलते हैं ठीक उसी प्रकार का हूँ। इस तरह वे इन सभी को यथार्थ समझकर मिथ्या अभिमान का आरोप करते हैं। मनुष्य होने पर भी मानों अपने को देवता के अंश से अवतीर्ण अथवा किसी देवता द्वारा अधिष्ठित अतएव देवता मान कर दिव्य पुरुषों के उपयुक्त काम करके अपना माहात्म्य दिखाते हैं।

सरलार्थ-

इस प्रकार अनेक राजा हैं जिनके सभा में धूर्त स्वार्थसम्पादन में रत रहते हैं वे धनरूप मांस संग्रह में गृध के समान हैं, सभामण्डप रूप कमलवन में स्थित बक पक्षी स्वरुप प्रवञ्चन (ठगने) में कुशल कुछ धूर्त रहते हैं और ये राजाओं को ही संबोधन करते है कि द्यूत क्रीडा विनोद होती है। परस्त्री गमन चातुर्य है, शिकार करना व्यायाम है। मद्यपान को विलासिता, किसी विषय में असावधानी ही वीरता है, और स्वयं की पत्नी का परित्याग ही अनासक्ति है, गुरुपदेश की अवज्ञा ही स्वाधीनता है, स्वेच्छानुसार विद्यमान सेवकों के लिए दण्ड का अभाव ही सुख सेविका है।, नृत्य गीत वाद्यादि में और गणिकाओं में आसक्ति ही रसिकता है, महान् अपराध में ध्यान न देना अपनी महानुभवता का परिचय है दूसरों द्वारा किये अपमान को सहन करना

टिप्पणी

ही क्षमा है। सूक्ष्मरुप से कार्यों का समालोचन नहीं करना निष्पक्षता है। इस प्रकार से प्रतारण निपुण धूर्त गुणों में दोषों का आरोप करते है। किन्तु वे मन में स्वयं ही उपहास करते हुए देवताओं की यथा योग्य स्तुति से राजाओं की प्रतारणा करते हैं। अन्यपक्ष में तो राजा धन अहंकारवश उन्मत होते हुए लोगों की इस प्रकार स्तुति से चैतन्य विहीन होते हैं। अतएव ये जैसे कहते हैं मैं वैसा ही हूँ। ऐसा चिन्तन करते हैं इन सब को यथार्थ मानकर झूठा अभिमान करते हैं। मनुष्य होते हुए भी वे राजा अपने को देवता के अंश का अवतार या देवताओं द्वारा अधिष्ठित मानते हैं। अपने कार्य को राजा देवानुग्रह मानते हैं। इस प्रकार राजा समस्तलोक के उपहास की योग्यता प्राप्त करते हैं। शुकनास के कहने का आशय है कि हे चन्द्रापीड तुम इन राजाओं के समान न होना।

व्याकरणविमर्श

समास

आस्थाननलिनीबकैः - आस्थानम् एव नलिनी आस्थाननलिनी इति कर्मधारयसमासः। आस्थाननलिन्यां बकः आस्थाननलिनीबकः, तैः इति सप्तमीतत्पुरुषसमासः।

प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः - दिव्याचिताः चेष्टानिभावाः दिव्योचितचेष्टानुभवाः इति कर्मधारयसमासः। प्रारब्धाः दिव्योचितचेष्टानुभवा यैः ते प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः इति बहुव्रीहिसमासः।

सन्धि

प्रतारणकुशलैर्धूर्त्तैरमानुषोपचिताभिः - प्रतारणकुशलैः+ धूर्तैः+ अमानुषोपचिताभिः।

देवाधिष्ठितोऽहम् - देवाधिष्ठितः+ अहम्।

अलंकार विमर्श

अपर - इस वाक्य में पारम्परिक रुपक अलंकार है।

इति इस वाक्य में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

सदैवतम्- वाक्य में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

कोश- ''सत्त्वं गुणे पिशाचादौ बले द्रव्यस्वभावयोः'' इति मेदिनी।

पाठगत प्रश्न 18.3

15. राजसभा में स्थित स्वार्थ निष्पादनरत धूर्त कैसे होते हैं?
16. धूर्तो के मत में द्यूतक्रीडा क्या है?
17. राजसभा में स्थित धूर्तो का नय में प्रभुत्व क्या है?

18. लोग कैसे निश्चेतन होते हैं?

19. वे राजा लोग किस कारण से हास्यपद होते हैं?

पाठसार

यौवन, धनसम्पति, प्रभुत्व एवं अविवेकता इन में एक भी महान अनर्थ को पैदा कर सकती है। जहाँ पर ये चारों होती हैं वहाँ तो कुछ भी नहीं कह सकते हैं। यह दुराचारणी लक्ष्मी जिस राजा का आश्रय करती हैं वह अज्ञान से ही दुराचारपरायण हो जाता है। इस पाठ में महाकवि वाणभट्ट ने शुकनास के मुख से चन्द्रापीडोपदेशव्याज से उस लक्ष्मी के कुप्रभावों को कारण सहित वर्णित किया है। जैसा कि वह लक्ष्मी ही राज्याभिषेक के समय में ही मंगलकलश के जल से राजाओं को दुर्गुणों को हटाये बिना उदारता को धो देती है। हवन की अग्नि से चित को मलिन करती है।, पुरोहितों के कुशाग्र भागरुपी मार्जनी से दया-दाक्षिण्य क्षमा सन्तोष आदि गुणों को दूर करती है। मुकुट के पट्टबन्धन (पगड़ी) से बर्धिक्यगत स्मृति को आच्छादित कर देती है। छत्र मण्डल से अनेक परलोक ज्ञान को दूर करती है। चामरों से सत्यकथन को छिपा देती है। बेंतदण्ड से सद्गुणों को दूर संस्थापित करती है, जय शब्दादि कलरव से हितकारी वचनों का नहीं सुनते हैं। जिस यश में नाम की राजस्तुति होती हैं, जैसे राजा को यह कार्य करना चाहिए। इस प्रकार बैठना चाहिए, इस प्रकार आचरण करना चाहिए, ऐसा उत्तम राजचरित वर्णन रूप स्तुति जैसे पत्र से पल दूर किया जाता है। उसी प्रकार राजा की ध्वजा के वस्त्र रूप मंत्र से उन सब को दूर करती यह लक्ष्मी।

परिश्रम से थके पक्षियों के शिथिलभूत गलदेश जैसा क्षणभर के लिए चञ्चलता को प्राप्त होता है। खद्योत (जुगनू) के प्रकाश जैसे क्षणभर के लिए सुन्दर होता है। उसी प्रकार यह सम्पत्ति सुन्दर प्रतीत होती है। इस सम्पत्ति के चंचल होने से ज्ञानियों द्वारा सम्पत्ति के लोभी होते हुए कुछ राजा ज्ञानियों के निंदा के पात्र होते हैं। वे कुछ धनलाभ के अहंकार से अपने जन्म के वृतान्त को भूल जाते है और वात, पित्त, कफ द्वारा दूषित रक्त वाले अनेक दोषों से विषय आसक्ति यन्त्रणा को भोगते हैं। शब्द स्पर्श आदि विषयों के ग्रहण में लालसा से विषयों की बाहुलाय से पंचाधिक या पञ्चाधिक होने पर भी हजारों की संख्या से इन्द्रियों से कष्ट का अनुभव होता है। स्वभाव से ही मन विविध विषयों में दौड़ता है इस कारण से एक होने पर भी मन हजार प्रतीत होता है। उस मन से ही राजा चंचलता को प्राप्त होता है। उससे ये राजा पुनः दुष्टों से ग्रहीत के समान, प्रेतों से गृहीत के समान, पिशाचग्रस्त ही दिखाई देते हैं। वे मुख को वक्र करते हैं। जैसे कामदेव के कुसुम बाणों से घायल प्राणियों के समान प्रकट करते हैं। धन की अहंकार रुपी अग्नि से दग्ध जैसा ही आचरण करते हैं। केकड़े के समान कुटिल व्यवहार करते हैं। वे राजा कर्तव्य पक्ष में चलने के लिए राजाओं की शक्ति नष्ट होती है। उसी कारण से पंगु के समान दूसरे लोगों द्वारा चलाये जाते हैं। झूठ बोलने के अभ्यास के कारण कष्ट से ही कुछ बोल पाते हैं, जैसे विष से विकृत मुख वाले बोलते हैं। सप्तपर्ण के पुष्पों के कण के स्पर्श से जैसे शिरोवदेना उत्पन्न होती है, वैसे ही लक्ष्मी के मद से रजोगुण सम्भूत रक्तनेत्र युगल प्रजा में दुःख उत्पन्न करता है। वे राजा लोग मरणासन्न के समान बान्धवों को नहीं

टिप्पणी

पहचाते हैं। नेत्र रोग से आक्रान्त के समान वे प्रतापी लोगों को नहीं देखते हैं। कालसर्प द्वारा दंशित जन जैसे विष वैध के उत्कृष्ट महामन्त्रों से भी चैतन्य को प्राप्त नहीं होते हैं, वैसे ही राजा उत्कृष्ट महामन्त्रों से भी चैतन्य को प्राप्त नहीं होते हैं। अर्थात् राजा उत्कृष्ट महामन्त्रियों की मन्त्रणा से भी अपने कर्तव्यों को नहीं जानते हैं। लाख निर्मित आभूषण जैसे अग्नि को सहन नहीं करते उसी प्रकार राजा लोग भी अन्य के प्रताप को सहन नहीं करते हैं। खम्बे (स्तम्भ) से बन्धे हाथी के समान हितकारी उपदेशों को नहीं सुनते है। धनलोभ रूपी विष से मूर्च्छित वे सभी वस्तुओं को धनमय देखते हैं। पत्थर से तीव्र किये गये बाण जैसे धनुष से छूटने के बाद निर्दिष्ट लक्ष्य को भेदते हैं। उसी प्रकार वे सुरा सेवन वर्धित दर्प वाले राजा दुष्टों से प्रेरित होकर प्रजा को पीड़ित करने वाले होते हैं। दूर स्थित सद्वंशों को भी बैंत या दण्ड को फेंक कर फलों का आहरण के समान नाशक है। अकाल विकसित मनोहारी पुष्प रम्य होकर भी जन सन्ताप के कारण होते हैं। उसी प्रकार राजा रम्य होकर भी विनाश कारक ही है। उन राजाओं के भवन कामुक जनों से भरे वैश्यालय के समान नीचस्वभाव लोगों का आश्रय स्थल होते हैं। वे राजा पाप परिपूर्ण होते हुए भी प्रतिदिन स्फूर्तिकाय होते हैं। उस अवस्था में कामादि दोषों से दुष्ट वे वांबी की मिट्टी से उत्पन्न तिनके के अग्रभाग पर गिरे जल बिन्दु के समान स्वयं के पतन को जानने में समर्थ नहीं होते हैं।

इसी प्रकार अनेक राजा है जिनकी सभामण्डल रूप मद्यवन में स्थित स्वार्थसम्पादन में रत गृधों के समान ठगने में कुशल कुछ धूर्त होते हैं। वे दोषों को भी गुण मानते है। जैसे धूतक्रीडा विनोद होता है। अभिमान चातुर्य, शिकार करना व्यायाम, मद्यपान विलासिता, असावधानी वीरता, अपनी धर्म पत्नी का परित्याग अनासक्ति होती है। इस प्रकार से वे प्रतारण निपुण धूर्त जानकर राजाओं को ठगते हैं। वे राजा धनोन्मत्त होकर जनस्तुति से विवेकहीन हो जाते हैं। वे अपने को देवताओं का अशं मानते हैं। इस प्रकार वे सभी उपहास के पात्र होते हैं।

पाठान्तप्रश्न

1. दुराचारी लक्ष्मी के वशीभूत राजाओं की दशा कैसी होती है वर्णन करो।
2. अभिषेक के समय राजाओं के सद्गुण किससे कैसे धुल जाते है।
3. राजा इन्द्रियों से किस प्रकार का कष्ट भोग करते है।
4. राजा अपने कर्तव्य व अपने पतन को जानने में असमर्थ होते है, सोदाहरण व कारण स्पष्ट करो।
5. राजाओं की सभा में कैसे धूर्त रहते है स्पष्ट करो।
6. स्वार्थनिष्पादन रत धूर्त किस प्रकार से दोषों में गुणों का आरोप करते है?
7. अहंकार से उन्मत राजा किस प्रकार प्रजा के उपहास के पात्र होते हैं?

पाठगतप्रश्नों के उत्तर

18.1

1. व्याकुल और दुमति होते हैं।
2. मंगलकलश के जल से।
3. हवन की अग्नि की धूम से।
4. पुरोहितों के कुशाग्र सम्मार्जनी से।
5. मुकुट के बन्धन से।
6. ध्वजपत्र में संलग्न पल्लव से।

18.2

7. मनस्वी जनों द्वारा।
8. विविध विषयों की ग्रास की लालसा।
9. मन स्वभावतः चंचल होने से।
10. मुखभंग सहस्राधिक।
11. कर्कट/केकड़े के समान।
12. बान्धवों के परिचय।
13. श्मशान की अग्नि की भस्म के समान।
14. सप्तपर्ण के वृक्ष के समान।

18.3

15. प्रतारणकुशल, दोषों में गुणों का आरोप करते हुए स्वयं ही हँसने वाले होते हैं।
16. विनोद।
17. स्वेच्छाचारी।
18. वित्तमदमत्तचित जन ही निश्चेता होती है।
19. राजा लोग दिव्यों चितचेष्टादर्शन से।